ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-2* Issue-4* July- 2017
Anthology : The Research

बघेलखण्ड के ऐतिहासिक परिदृश्य में साहित्य एवं बघेली व अवधी के संस्कार गीतों की प्रासांगिकता

अमित शुक्ल
सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग
ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय
रीवा, म.प्र.

सारांश

भारत के मध्य भाग में स्थित बघेलखण्ड प्रकृति के असीम सौन्दर्य से परिपूर्ण उच्च पर्वत मालाओं की सीमा से सुरक्षित नदियों एवं प्रपातों से शीतल जल से युक्त अत्यन्त घने जंगलों से हरा–भरा विविध, वन्य पशुओं के क्रीड़ाओं का स्थान बहुरंगी पक्षियों की मधुर वाणी से मुखरित, कवियों, गीतकारों, उपन्यासकारों की प्रेरणास्त्रोत कल्पना से अनुरंजित इतिहासकारों की सशक्त लेखनी से सम्मानित अलौकिक प्रतिभा से सम्पन्न व समृद्ध बघेलखण्ड शताब्दियों से अपनी गरिमा से आकृष्ट कर भारत के हृदय में सुशोभित हो रहा है। साहित्यिक परम्परा का प्रस्थान जनिक का आल्हाखण्ड तथा बांधवेश कर्णदेव के शासन काल में लिखा गया ज्योतिष ग्रंथ, सारावली को माना गया है। महाराज कर्णदेव के पश्चात लगभग 250 वर्षो तक के इतिहास में साहित्य सृजन की धारा क्षीण रही। सोलहवीं शताब्दी में महाराज वीरदेव, वीरभान, रामचन्द्र और वीरभद्र के काल में पुनः साहित्य सृजन को गति मिली पर ये नरेश कवि न होते हुए भी इनका साहित्य के प्रति प्रेम बघेलखण्ड, के साहित्य परम्परा का मील का पत्थर है। बघेलखण्ड के शलाका पुरूष डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल जी हैं। जिन्होंने साहित्य रचनाएँ व साहित्यकारों की लंबी श्रृंखला बनाई, उनकी बघेली भाषा और साहित्य की पुस्तक मील का पत्थर है, उन्होंने बघेली भाषा का इतिहास, बघेली लोक साहित्य को उजागर करने का प्रथम प्रयास किया। उन्होंने साहित्य परम्परा को बघेली भाषा व साहित्य के नाम से देश को परिचित कराया उनके आंचलिक उपन्यास बघेलखण्ड अंचल का प्राण तत्व है। यहां के लोकगीत 21 वीं सदी के भूमंडलीकरण मे भी लोकप्रियता के शिखर पर हैं। बघेली और अवधी के संस्कार गीतों की लोकप्रियता वर्तमान समय मे बरकरार है, है वहीं बघेलखण्ड और अवधी के संस्कार गीतों को तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो उनमे साम्य के साथ अंतर भी दिखाई देता है। पर ये संस्कार गीत आज भी परम्परा को कायम रखते हुए जन–जन मे बसे हुए हैं, कहीं न कहीं किसी न किसी संस्कार मे इनकी गूंज सहज ही कानों मे मधुर रस घोल ही देती है। अतः बघेली और अवध के इन संस्कार गीतों का आकर्षण आज भी बना हुआ है, और इनकी महक भविष्य मे भी बनी रहेगी क्योंकि बघेली और अवधी के संस्कार गीतों मे मन को मोह लेने वाली अपार क्षमता है

मुख्य शब्दः बघेलखंड, साहित्यिक परम्परा, लोकगीत, संस्कार

प्रस्तावना

बघेलखण्ड के ऐतिहासिक परिदृश्य की ओर दृष्टिगत हों तो साहित्यिक परम्परा का प्रस्थान जनिक का आल्हाखण्ड तथा बांधवेश कर्णदेव के शासन काल में लिखा गया ज्योतिष ग्रंथ, सारावली को माना गया है। महाराज कर्णदेव के पश्चात लगभग 250 वर्षो तक के इतिहास में साहित्य सृजन की धारा क्षीण रही। सोलहवीं शताब्दी में महाराज वीरदेव, वीरभान, रामचन्द्र और वीरभद्र के काल में पुनः साहित्य सृजन को गति मिली पर ये नरेश कवि न होते हुए भी इनका साहित्य के प्रति प्रेम बघेलखण्ड, के साहित्य परम्परा का मील का पत्थर है। इस काल में लोकव्यापी सगुण और निर्गुण भक्ति धाराओं से युक्त बघेलखण्ड के साहित्य की झलक दृष्टिगत होती है। बघेलखण्ड के विश्वनाथ सिंह और रघुराज सिंह जो 19 वीं शताब्दी के अग्रणी साहित्य सृजन धर्मी कहें जाते हैं। इनका हिंदी और संस्कृत में समान अधिकार था। उनकी श्रेष्ठ कृति आनन्द रघुनन्दन को हिन्दी का प्रथम नाटक माना गया है। इस प्रकार हिन्दी के प्रथम नाटक का श्रेय बघेलखण्ड को प्राप्त है। उनकी रचनाएँ है–परमत्व, आनन्द, रघुनन्दन, संगीत रघुनन्दन, गीत रघुनन्दन, व्यंग प्रकाश, विश्वनाथ प्रकाश, अहिक यष्टयाम, धर्मशास्त्र त्रिंशत श्लोकी, परमधर्म निर्णय, पाखण्ड मण्डिनी कवि, शस्त्र शतक, ध्रुवाष्टक, अयोध्या महात्म्य, अवध नगर का वर्णन,

फुटकर भजन, संस्कृत में लिखी गयी रचनाएँ तत्वमस्यर्थ सिद्धान्त भाष्य, रामगीता की टीका, सर्व सिद्धान्त का टीका, राम रहस्य का टीका, राम मंत्रार्थ की टीका, सुमार्ग स्त्रोत, वैष्णव सिद्धान्त, धनुर्विद्या, राम सागराहिक, संगीत रघुनन्दन, मुक्ति–मुक्ति रूदानन्द संबोध, राम चन्द्राहिक, दीक्षा निर्णय, सुमार्ग की टीका ज्योत्स्ना, राम परत्व, वासुदेव सहस्त्रनाम मुक्ति प्रभा। इस प्रकार महाराज रघुनाथ सिंह के रचनाधर्मिता विरासत से मिली उनकी निम्न रचनाएँ हैं–आनन्दामबुनिधि, रूकमिणी परिणय, भ्रमर गीत, हनुमान चरित्र, रघुपति शतक, परम प्रबोध, शम्भू शतक, जगन्नाथ शतक, रघुराज मंगल, व्यगार्थ, चन्द्रिका, विनय प्रकाश, भक्तमाल, भक्ति विलास, विनय पत्रिका, गध शतक, राम स्वयंवर, राम रंजन, जगदीश शतक, नर्मदाष्टक, सुधर्मा विलास, राष्टायम। रघुराज सिंह रचनाकारों के आश्रयदाता थे भक्ति और श्रृंगारपरक गीतों के रचयिता मधुर अली को राज कोष से 150–00 रूपए साहित्यिक वृत्ति मिलती थी। मधुर रचना युगल विनोद लोक मानस की धरोहर है। बघेलखण्ड के साहित्य परम्परा ने तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से रस ग्रहण किया है। इसका प्रमाण डॉ. गोपाल शरण सिंह का कृतित्व है उन्होंने ऐसी कविताएँ लिखी जो उन्हीं के विरूद्ध चली गयी। उन्होंने अपनी कविताओं के केन्द्र में गरीब, मजदूर, शोषित और पीड़ितों को रखा है। बघेलखण्ड के माधवगढ़ (सतना) के हरशरण शर्मा, शिवा राधिका, राधिकेश के पुत्र अम्बिका प्रसाद, अम्बिकेश, अम्बिका प्रसाद दिव्य की साहित्य साधना बघेलखण्ड की साहित्य परम्परा की अक्षुण्ण धरोहर है। इस प्रकार बैजनाथ, बैजू, सैफुद्दीन सैफू, रामदास पयासी और हरीदास इसी परम्परा के लोक कवि हैं। उन्होंने सूक्तियों, लोककथाओं आदि के माध्यम से बघेलखण्ड के साहित्य में वृद्धि की वहीं डॉ. रामदास प्रधान व लखन प्रताप सिंह उरगेश ने बघेली लोकगीतों का संग्रह कर बघेली लोक साहित्य की श्री वृद्धि की। विद्रोही कवि शेषमणि रायपुरी ने अपने काव्य सौन्दर्य से बघेलखण्ड के साहित्य को उकेरा। बागी के डायरी और कैकेयी खण्ड काव्य उनकी श्रेष्ठ कृतियाँ हैं, सिद्ध विनायक द्विवेदी, आदित्य प्रताप सिंह का गद्य काव्य, कविताएँ कहानी, जापानी छन्द हाइकू की तर्ज पर बघेली हाइकू की संरचना की है। ज्योति प्रकाश सक्सेना, भगवान दास सफाड़िया, धन्य कुमार सुदेश, प्रभृति रचनाकारों ने बघेलखण्ड की साहित्यिक परम्परा को निरन्तर गतिशील रखा। महावीर प्रसाद अग्रवाल रामसागर शास्त्री, कुँवर सूर्यवली सिंह, अख्तर हुसैन निजामी, हरिकृष्ण देवसरे, प्रद्युम्न सिंह, राममित्र चतुर्वेदी की सृजन क्षमता और साधना दृष्टि से बघेलखण्ड का साहित्य लोक आलोकित हुआ। काव्यमंच के माध्यम से बघेलखण्ड के साहित्यक परम्परा को गति देने वालों में शम्भू काकू, बेधड़क, गिरिजाशंकर गिरीश, कालिका त्रिपाठी, सुदामा शरद, राजीव लोचन, नूर रिवानी, रफीक रिवानी, नदीम रिवानी, बाबूलाल दाहिया, अरूण नामदेव, श्रीनिवास शुक्ल सरस, पारस नाथ मिश्र, रामचन्द्र सोनी, विरागी, प्रमोद वत्स और अकेला का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। घनश्याम सिंह की सिकन्दरम, कृष्ण नारायण सिंह, धन्य कुमार सधेश, उर्मिला प्रसाद, भैरवदीन मार्तण्ड, रेवा प्रसाद तिवारी, सुधाकर तिवारी, डॉ. चन्द्रिका प्रसाद, डॉ. आर्या त्रिपाठी, डॉ. श्रीमती विनोद तिवारी, डॉ. अभयराज त्रिपाठी, रामदर्शन राही, कमला प्रसाद ने बघेलखण्ड के साहित्य परम्परा को निखारा।

बघेलखण्ड में सन् 1956 से साहित्यिक गतिविधियों का प्रवाह निरन्तर प्रवाहित हो रहा है। देखा जाए तो शारदा प्रसाद मालवीय के मुक्तकों तथा उनकी पुस्तक 'जिन्दगी इंसान की' एक प्रेरक पुस्तक रही है। कहानी लेखन में तारा जोशी, मोहन श्रीवास्तव कैलाश सक्सेना की रचनाएँ उल्लेखनीय रहीं। उपर्युक्त साहित्यकारों व रचनाओं की निर्वाध परम्परा को कायम रखने में इस काल के साहित्य की बघेली साहित्य को बघेलखण्ड से उठाकर राष्ट्रीय व अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति अर्जित कराने वालों में यदि किसी का प्रथम नाम आता है तो वह **बघेलखण्ड के शलाका पुरूष डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल** जी हैं। जिन्होंने साहित्य रचनाएँ व साहित्यकारों की लंबी श्रृंखला बनाई, उनकी **बघेली भाषा और साहित्य** की पुस्तक मील का पत्थर है, उन्होंने बघेली भाषा का इतिहास, बघेली लोक साहित्य को उजागर करने का प्रथम प्रयास किया। उनकी बघेली लोक रागिनी पुस्तक भी बघेलखण्ड के लोकगीतों का संग्रह है डॉ. शुक्ल बघेलखण्ड के कोने–कोने में जाकर लोकगीतों, लोककथाओं का संग्रह कर तथा जन–जीवन के रहन–सहन उनकी मानसिकता का गहन परीक्षण कर साहित्य रचना की। उन्होंने प्रारंभ में काव्य को अपना साहित्य का विषय बनाया बाद में आंचलिक उपन्यासों के माध्यम से बघेलखण्ड के ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परम्परा को उजागर कर एक नयी दशा की ओर उन्मुख किया। उनके साहित्य की ख्याति **राष्ट्रीय व अर्न्तराष्ट्रीय** स्तर पर मिली। डॉ. शुक्ल जी के कई उपन्यास भोपाल व रीवा विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में जुड़े रहे। अभी भी बघेली भाषा और साहित्य तथा बघेली लोक रागिनी पुस्तक के माध्यम से शोध–कार्यो को गति दी जा रही है। बघेलखण्ड के साहित्य परम्परा को शिखर तक ले जाने में **डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल का प्रयास अद्भुत तो है पर यहाँ के साहित्य परम्परा को बघेली भाषा व साहित्य के नाम से देश को परिचित कराया उनके आंचलिक उपन्यास बघेलखण्ड अंचल का प्राण तत्व है।**

बघेलखण्ड अपने अतीत के काफी वर्षो तक बिखरा और विकेंद्रित बना रहा। उसकी आंचलिक परिकल्पना और चेतना काफी वर्षों के बाद प्राप्त हुई। **सन् 1970–80** के मध्य बघेलखण्ड को आंचलिक चेतना का धुंधला–धुंधला सा स्वरूप प्राप्त हुआ जो धीरे–धीरे अपनी विशिष्ट चेतना को प्राप्त हुआ। जिन दिनों भोजपुरी, मैथिली और अवधी के कथाकार अपने–अपने क्षेत्र के आंचलिक परिवेश को विशिष्ट स्वरूप और आकार दे रहे थे, **फणीश्वरनाथ रेणु, राही मासूम रजा** जैसे कथाकार अपनी रचनाओं के द्वारा आंचलिकता को विशिष्ट गति दे रहे थे, उन दिनों बघेलखण्ड और बघेली में आचंलिकता की सुगबुगाहट भर यदा–कदा देखने और सुनने को मिलती थी। **सन् 1960–65** के बीच प्रोफेसर **महावीर प्रसाद अग्रवाल** के निर्देशन में पहली बार बघेलखण्ड के

ऊर्जावान लेखक **भगवती प्रसाद शुक्ल** को बघेलखण्ड के लोक साहित्य और लोकभाषा पर कार्य करने की प्रेरणा दी। धीरे–धीरे पूरे बघेलखण्ड में आंचलिकता की एक लहर विस्तारित हुई, जिसमें बघेली और बघेलखण्डों आंचलिक चेतना को एक स्वरूप देने का प्रयास किया। पूरे अंचल में बघेली लोकगीत, लोककथा, लोकनाट्य का संकलन और अध्ययन प्रारंभ हुआ। उन दिनों विंध्य प्रदेश में हिन्दी के विशिष्ट विद्वानों भोजपुरी और मैथिली के मर्मज्ञ विद्यानिवास मिश्र बघेलखण्ड के सूचना अधिकारी थे। उन्होंने पूरे बघेलखण्ड क्षेत्र में लोकजीवन, लोकसाहित्य की आंचलिक छवि को उकेरा और आंचलिकता को एक स्वरूप प्रदान किया। परिणाम यह हुआ कि बघेलखण्ड के आंचलिक साहित्य को खंगालने और संगृहीत करने और शोध कार्य करने की मानसिकता विकसित हुई।

डॉ. शुक्ल ने सिदद्ध विनायक जी के उपन्यासों में बघेलखण्ड के जंगल, नदी, नाले, रीति–रिवाज और लोकधर्म के शोध प्रयास किए। परिणामस्वरूप उनके 'रागी–वैरागी' 'प्यासी मीन' उपन्यासों में आंचलिक तत्व किसी न किसी मात्रा में मिले। शिक्षा शास्त्री और समीक्षक **डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी** ने लिखा है कि आंचलिकता के तकनीकी आधार पर 'खारे जल का गाँव' बघेली और बघेलखण्ड का प्रथम आंचलिक उपन्यास है, जिसमें बघेलखण्ड के दक्षिणी अंचल शहडोल जिले के व्यौहारी कस्बे को केंद्र में रखकर कथा प्रसंग उठाया गया है। लेखक **डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल ने** उपन्यास के प्रारंभ में प्रासंगिक में लिखा है–''प्रस्तुत उपन्यास कितना आंचलिक है और कितना अनांचलिक, ये मैं नहीं कह सकता, मैं तो इतना जानता हूँ कि वर्षो से विंध्य के जन–जीवन से सक्रिय रूप से जुड़े रहने के कारण कुछ व्यक्तियों के 'कैरेक्टर' मेरे मन–मस्तिष्क को झकझोरते हैं। उनके व्यक्तित्व की यथार्थता को अंकित करने के लिए ही मैने एक कथासूत्र को तैयार किया है। ये पात्र विंध्याचल की माटी और पत्थर से बने हैं। इनमें मेरा अपना कुछ नहीं है। ''ये उपन्यास आंचलिक उपन्यास के रूप में ए.पी.एस. विश्वविद्यालय रीवा, भोपाल विश्वविद्यालय भोपाल, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन और इन्दौर विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रम के रूप में निर्धारित रहे। उपन्यास में लेखक ने यह भी माना है–''प्रस्तुत उपन्यास में विंध्याचल के एक गाँव की कथा है। ये देश के किसी भी अंचल के किसी भी गाँव की कथा है। ये देश के किसी भी अंचल के किसी भी गाँव की कथा हो सकती है। इसके पात्र देश के किसी भी अंचल के पात्र हो सकते है।'' आंचलिक उपन्यास के रूप में इसकी लोकप्रियता इस बात से सिद्ध होती है कि उपन्यास के आठ संस्करण हो चुके हैं। प्रथम संस्करण सन् 1972 में प्रकाशित हुआ था। 'खारे जल का गाँव' के अतिरिक्त डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल के पाँच अन्य आंचलिक उपन्यास भी बघेलखण्ड और बघेली की आंचलिकता को जीवंत बनाए हुए हैं। इनमें ये सबसे लोकप्रिय 'माटी का आकार' उपन्यास है। यह सन् 1980 में प्रकाशित हुआ जो सीधी जिले की आदिवासी जनजातियों के लोक जीवन, लोक चरित्र, लोक धर्म, लोक रीति–रिवाज का चित्रण करते हैं। सीधी अंचल से लेकर छत्तीसगढ़ के सरगुजा जिले के आदिवासी जनजातियों को समेट कर उनके आंचलिक चरित्र को उजागर करता है। उपन्यास में आदिवासियों के लोकधर्म, संस्कृति और जीवनचर्या को यथातथ्य चित्रण समूचे क्षेत्र के आंचलिक परिवेश के जीवन दर्शन को इन शब्दों में चित्रित किया गया है।

'**कै दिन की जिनगी अठ कै दिन का मेला,** के दिन में खेड़ा भाजी के दिन करेला, कै दिन खटाही पानी बूड़े ढेला, पंछी उड़ही पिंजरा हो ही अकेला। तीरथ, बरत देवधामी मनावी।'' 'माटी का आकार' उपन्यास बघेलखंड के आदिवासी जनजातियों के अंचल में तो लोकप्रिय हुआ ही, झारखंड अंचल तथा आंध्रप्रदेश के आदिवासी अंचल में प्रसिद्ध हुआ है। इसका अनुवाद तमिल, तेलगू और गोड़ानी बोली में भी हुआ। इस प्रकार 'माटी का आकार' आंचलिक उपन्यासों की परंपरा में अपनी ख्याति को बनाए हुए है। 'माटी का आकार' इतना लोकप्रिय हुआ कि इसका दूसरा भाग 'लॉपी' उपन्यास के रूप में 1994 में प्रकाशित हुआ। 'माटी का आकार' की नायिका लॉपी के नाम से उपन्यास का दूसरा भाग प्रचारित हुआ लेखक डॉ. शुक्ल ने 'लॉपी' उपन्यास की भूमिका अस्तित्व की कथा में लिखा है–घटाटोप अंधकार से राह बनाती हुई जनजातियों की व्यथा–कथा, विंध्याचल की सुदूर घाटियों, पर्वत, श्रृंखलाओं, जंगलों और नर्मदा, सोन की टेढ़ी–मेढ़ी नदियों के बीच से पथ बनाती आगे बढ़ती जीवन की उच्छल तरंगों में बहती 'लॉपी'। कहाँ से पहुंचती है पर मन धरती के गोद में छिपा रहता हैं वैभव की चमक उसे नहीं आकृष्ट करती। कै दिन के जिंदगी और कै दिन का मेला का मंत्र वह जपती रहती है। औद्योगीकरण की चमक–दमक ने आदिवासियों के जन–जीवन को अस्त–व्यस्त और त्रस्त कर दिया है। वे कभी सत्ता का स्वाद चखती है, ललचाए मन से ....कभी ऊबकर भाग खड़ी होती है.....और अंत में खाली हाथ...खाली मन.... बचपन को बिसूरती लॉपी....।'' ''लॉपी विंध्यांचल की प्रतिनिधि कथा नायिका है तो आदिवासी जनजातियों के विभिन्न आयामों और रूपों को संस्पर्श करती हुई चलती है। इसकी कथा सुख–दुख के दो समानांतरों किनारों को छूती हुई बहती है। लॉपी इस उपन्यास की एक अद्भुत पात्र है।' साहस संघर्ष और अन्यास से सतत जूझने की प्रेरणा देने वाला चरित्र पर मूल्यहीनता के अंधड़ में टूट–टूट जाता है–फिर उठता और अंधड़ में फँस जाता है। यह अनूभूति धरती से, अनुस्यूत अंकुर है–जो कभी वृक्ष बना, आसमान से आँखे मिलाया और मुरझा गया। सरगुजा और अंबिकापुर की आदिवासी अंचल की सशक्त पात्र राजमोहिनी देवी हैं जो धर्म के आडंबर को चीरकर सत्य की पहचान बनाने का प्रयत्न करती है। इस अंचल में धर्म परिवर्तन की लहर चलती है जिसमें आदिवासियों को अपनी संस्कृति में खतरा बना हुआ है। इस खतरे को नष्ट करने के लिए पंचागुरू जैसे पात्र सक्रिय हैं। वे आदिवासियों को संस्कारित करना चाहते हैं जबकि लॉपी उनकी अपनी संस्कृति में ही आदिवासियों की पहचान बनाना चाहती है। इस प्रकार लॉपी उपन्यास विंध्य में बहुत बड़े वर्ग के जीवन यापन का दस्तावेज है।

डॉ. शुक्ल का 'कब तक' उपन्यास मध्यवर्ग की आंचलिक जीवन यात्रा की कथा पर केंदित है। यह सन 1982 में प्रकाशित हुआ। इसमें आंचलिक कथानक के माध्यम से मानव के उत्पीड़न को रेखांकित करने का प्रयत्न किया गया है। मानवीय रिश्तों में इतनी जटिलता और पेचीदगी आ गई है कि वे अब अपनी संवेदनात्मक और आंचलिक पहचान भी खोते जा रहे हैं। इस उपन्यास में इनसे मुक्ति पाने की छटपटाहट है। कब तक उपन्यास की कथा का केंद्र नौढ़िया गाँव है। देश के विशाल नक्शे में नौढ़िया गाँव एक बिंदु की तरह भी नहीं है पर देश के हजार गाँव की तरह यह भी है। उन्हीं की तरह उसमें रूढ़ियाँ है, कुंठाएँ हैं, विसंगतियाँ है, पिछड़ापन है, धर्मांधता है, कुटिलता है और इन सबसे मुक्ति पाने की ललक है, आकांक्षा है। 'कब तक' आंचलिक उपन्यास में वह सब कुछ है जो हमारे गाँव में है। जो नहीं है, उसकी संभावनाओं का संकेत है। यह जीवंत कृति है। 'कब तक' उपन्यास की कथा अधूरी आंचलिक कथा हैं आंचलिक कथाएँ कभी पूरी नहीं होती। जब तक अंचल के व्यक्तियों की सामूहिक यात्रा चलती, गिरती और उठती रहती है।

डॉ. शुक्ल का '**ठहरा हुआ आदमी**' भी मध्यमवर्गीय जीवन यात्रा की आंचलिक कथा है। इसे निम्न मध्यमवर्ग की आंचलिकता का बोध कराने वाली कथा कह सकते हैं। प्रारंभ में उपन्यास के केंद्र में लेखक स्वयं अपने जीवन–मृत्यु को अपने ही आंचलिक परिवेश में उकेरना चाहता है क्योंकि धीरे–धीरे अपने अस्तित्व का निजीपन छूटता रहता है और अंचल आगे होता जाता है। उपन्यास के आरम्भ में डॉ. शुक्ल ने लिखा है ''अपने को केंद्र में रखकर आसपास की यथार्थ घटनाओं और पात्रों का कथात्मक रूप देखने का संकल्प लेकर आगे बढ़ा तो अपना गाँव, अपनी धरती और उसकी माटी, पहाड़, नदियाँ सब प्रत्यक्ष आते गए। फिर उनसे जुड़े हुए गाँव, घर, उनसे जुड़े हुए लोग और उनसे जुड़ी हुई घटनाएँ जैसे–जैसे परिवेश विस्तार पाता गया, उपन्यास के केंद्र से मैं विलीन होता गया और 'अंचल' हावी होता गया। 'रेत पर खड़े रिश्ते' 1999 में प्रकाशित डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल का अंतिम आंचलिक उपन्यास है जिसमें बघेलखण्ड के निम्न, मध्यवर्ग के पात्रों का माध्यम बनाकर कथासूत्र संजोए गए हैं। लेखक ने उपन्यास की भूमिका में लिखा है, ''आंचलिक कथानक के माध्यम से ही मैंने मानव के उत्पीड़न को रेखांकित करने का प्रयास किया है। इसमें मुक्ति पाने की छटपटाहट तो मेरे भीतर है पर उसके लिए मेरे पास कोई फार्मूला नहीं है। ''इस उपन्यास में भी यह छटपटाहट है। इस उपन्यास के केंद्र में बघेलखण्ड के दूरांचल में बसे शहडोल जिले की ब्यौहारी तहसील का एक गाँव है। कथा के कई पात्र उनका चरित्र और व्यक्तित्व वास्तविक है। पात्रों का संबंध जिन क्षेत्रों से है–उनकी रीति–रिवाज, लोकगीत और लोकजीवन काल्पनिक नहीं है, वास्तविक हैं, उनमें सच्चाई है। 'रेत पर खड़े रिश्ते' ऐसा आंचलिक उपन्यास है जिसमें लेखक कई–कई जगह अपने व्यक्तित्व के कई–कई रूपों में उपस्थित है। उसके आसपास लेखक के अनेकानेक रिश्ते बिखरे हुए हैं। लेखक के शब्दों में आज के सब रिश्ते रेत पर खड़े महल की तरह हैं। तूफान, तेज आँधी, बारिश हर समय टूटने को तैयार, बिखरने को आतुर। कुछ तो बदलते युग का प्रभाव है और कुछ तो बदलती मानसिकता का। अर्थ लोलुपता, राजनैतिक महत्वाकांक्षा, यशलिप्सा और मक्कारी के कारण मूल्यों का विघटन इतनी तेजी से हो रहा है कि सब रिश्ते मुट्ठी में फंसी रेत की तरह गिरते जा रहे हैं।

वक्त का पहिया निरंन्तर घूमता रहता है, समय गतिशील है और भाषा भी। रूकना न मानव का स्वभाव न भाषा का। समय चक्र मे आंचलिक भाषा की जो मिठास पूर्व मे थी वह आज भी है और भविष्य मे भी रहेगी फिर वह चाहे बघेली हो या अवधी। इन भाषाओं के संस्कार गीत तो आज भी भूमंडलीकरण के इस दौर मे भी मन को मोह लेते है, यह तो आंचलिक भाषाओं का चमत्कार ही है । इसमे कोई संदेह नही कि लोकसाहित्य शिष्ट साहित्य के लिए सदा उपजीव्य रहा है और भविष्य मे भी रहेगा भरत वर्ष के मध्यभाग मे बघेलखंड व अवध दो ऐसे अंचल है जहॉ बघेलखंड की लोकभाषा बघेली है जिस पर बहुत दिनो तक अवधी का वर्चस्व रहने के कारण उपेक्षित बनी रही वहीं अवध क्षेत्र गंगा एवं सरयू जैसी महान नदियों के मैदानी सौंदर्य का अपूर्ण भूखण्ड है बघेली नामकरण के पूर्व इसे गोहराई या रिमहाई बोली कहते थे । अवधी तथा गोहराई बोली मे साम्य होने के कारण कुछ विद्वानों ने एक ही बोली के दो रूप माने हैं। पर बघेली भाषा के अध्ययन से व्याकरण रचना, ध्वनि तथा शब्द की दृष्टि से उसका स्वतंत्र अस्तित्व प्रमाणित हो चुका है अगर देखा जाए तो बघेलखंड और अवध के संस्कार गीत यहॉ की संस्कृति परम्पराओं को अपने आप मे समेटे हुए हैं दोनों क्षेत्रों के प्रचलित लोकगीतों मे ऐतिहासिक,सांस्कृतिक,धार्मिक तथा सामाजिक चेतना का भाव परिलिक्षित होता है किसी भी अंचल के लोकगीत या संस्कार गीत ग्राम्य संस्कृति का दर्पण है। इस दृष्टि से बघेली या अवधी क्षेत्र के लोकगीतों मे भी यह बातें दृष्टिगत होती हैं यहॉ के गीतों या लोकगीतों मे विविध धारणाएं, रूढ़िवादिता ,अन्ध–विश्वास आदि मान्यताएं देखने को मिलती है सादियों से सताए गए यहॉ के निवासियों की भावनाओं की अभिव्यक्ति यहॉ के गीतों मे मिलती है वर्तमान समय मे जहॉ परंम्परायें, संस्कार, परस्पर मानव प्रेम का हृास होता जा रहा है वहीं इस अंचल के संस्कार गीत मन को सहज ही मोह लेते हैं। बघेली और अवधी के संस्कार गीतों की लोकप्रियता वर्तमान समय मे बरकरार है और भविष्य मे भी रहेगी इसमे कोई संदेह नही बघेली और अवधी के जो संस्कार गीत हैं वे जन्म संस्कार, मुंडन संस्कार, जनेऊ संस्कार, विवाह संस्कार के गीत मुख्य हैं, इनके अतिरिक्त अनेक संस्कार गीत हैं जो यहां के जन मानस मे अपनी लोकप्रियता को कायम रखे हुए हैं बघेली और अवधी के मुख्य संस्कार गीतों मे जन्म संस्कार के समय गाए जाने वाले गीत सोहर , दादरा, कुआंपूजन आदि के गीत। पुत्र कामना के सोहर गीत आज भी कहीं–कहीं प्रचलन मे हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि पुत्र से बंश चलता है। बघेली व अवधी दोनों क्षेत्रों की नारी पुत्र कामना के लिए देवताओं से प्रार्थना करतीं हैं बघेलखंण्ड की नारी पुत्र प्राप्ति के लिए राम, सूर्य, गंगा से प्रार्थना करती हैं। यहां सूर्य मे पुत्र देने का सामर्थ्य अधिक

माना जाता है अवध क्षेत्र मे पुत्र की कामना गंगा और राम से की जाती है। गंगा स्त्री को पुत्र होने का वरदान देती है। उस समय स्त्री कहती है कि यदि मेरी मनोकामना पूर्ण होगी तो हे गंगा मइया मै आपको पिअरी चढ़ाऊंगी प्रसव गीतों का भी बघेलखंड मे अत्यंत महत्व है, यद्यपि गर्भाधान से लेकर जन्म तक पति पत्नी के हृास परिहास के गीत बघेलखंड मे पाये जाते है, किन्तु अवधी मे इस तरह के गीतों का बाहुल्य है पुत्र के जन्म लेने पर आनंद की अभिव्यक्ति वाली सोहर गीतों मे कौशल्या दशरथ और यशोदा नन्द धन वस्त्र लुटाते हुए बताए गए हैं। बघेली और अवधी के सोहर गीतों मे करूण भवनाओं की अभिव्यक्ति मिलती है, पर अवधी मे कुछ कम है। देखा जाए तो करूणा भवना की अभिव्यक्ति वाले सोहर गीत बघेली और अवधी दोनो मे अत्यंत प्रसिद्ध रहे हैं। बघेली और अवधी मे वर्णात्मक सोहर गीत भी दृष्टिगत होते हैं। जिसमे बालक के छोटे–छोटे पैरों तथा काली झालरि का भाव रहता है। अवधी मे इस प्रकार के गीतों को सरिया कहते हैं ये गीत पुत्र जन्म के बाद ही गाये जाते हैं इन जातियों मे बच्चे के जन्म से लेकर गाने की प्रथा है इस तरह के गीतों मे भी ननद,भाभी से नेग न मिलने पर नेग मागते हुए दिखाया गया है, अवधी मे इस अवसर पर गाए जाने वाले दादर मे भाभी एवं नंद को पति से कहकर बुलवाती है और उसको नेग देती है। बघेलखंड मे कुआं पूजने का भी विधान है। शिशु जन्म के बारहवें दिन कहीं कहीं गॉव मे इसका रिवाज है। लोगों का विश्वास है कि ऐसा करने से माता का स्तन दूध से पूर्ण रहेगा।

बघेलखंड मे पुत्र जन्म के समान मुंडन संस्कार धूमधाम से नही मनाया जाता। यह संस्कार तीन से पांच वर्ष या सात से आठ वर्ष के अंदर मनाते हैं अधिकतर यह संस्कार किसी तीर्थ स्थान देवी देवताओं के मंदिर पर या नदी के किनारे पूर्ण किया जाता है इस कृत्य मे बच्चे के फू–फू का होना अनिवार्य रहता है इस अवसर पर जो गीत गए जाते हैं। उन्हें मुंडन गीत कहा जाता है अवधी क्षेत्र मे भी यह संस्कार मनाया जाता है। इस अवसर पर अवधी मे कोई अलग गीत नही गाये जाते बल्कि सोहर गीत ही गाने की प्रथा है बघेली लोकगीतों मे फुआ और फू–फू के नेग की चर्चा रहती है जबकि अवधी मे मुंडन दादी करवाती है इसके अतिरिक्त यज्ञोपवीत (जनेउ)के गीत भी बघेलखण्ड और अवधी मे लोकप्रिय हैं, बघेलखंड के गावों मे आज भी यह संस्कार बड़े धूमधाम से मनाया जाता है यह कृत्य पुरोहित द्वारा सम्पन्न कराया जाता है इस संस्कार को बरूआ कहते हैं जो संस्कृति के बटुक शब्द से उत्पन्न हुआ है। इस अवसर पर 96 अंगुल की जनेउ का विधान है,जब यह संस्कार सम्पन्न हो जाता है तो बटुक दूर देश जाने लगता है, इसे रिसाना कहते हैं। जिसको बटुक का मामा कुछ द्रव्य या जमीन या आम के पेड़ देने को बाध्य होता है। बरूआ मे भीख मांगने की प्रथा है। अवधी क्षेत्रों मे भी यह प्रथा बरकरार है। बघेलखण्ड मे रश्म है उस समय के गाये जाने वाले गीतों मे करूण भावना का अभिव्यक्ति अत्यन्त सजीव हो उठती है, अवधी के गीतों मे भी ऐसा है पर वह बघेलखंण्ड के गीतो की तरह सजीव नही होते इस प्रकार बटुक अपने मां बाप तथा अन्य बड़ों से भीख मागता है, और काशी प्रस्थान की ओर तैयारी करता है। विशेष बात यह है कि जहॉ बघेली गीतों मे मां आशीर्वाद देती है वहीं अवधी मे मां बच्चों को घर पर ही पढ़ने के लिए आग्रह करती है।

निष्कर्ष यह है कि बघेलखण्ड की साहित्य परम्परा गतिशील है, यहाँ के साहित्यकारों की अनेक पीढ़ियों का योगदान अविस्मरणीय रहेगा। आज के बघेलखण्ड का साहित्यकार पद्य के पहाड़ से गद्य की गंगा निकालने के लिए आतुर नजर आ रहा है। पद्य की रचनाओं के साथ अब गद्य की अधिकांश रचनाएँ बघेली साहित्य में दृष्टिगत हो रही हैं। इसी प्रकार बघेली व अवधी के संस्कार गीतों है को तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो इसमे साम्य अधिक और अंतर कम है। फिर भी बघेली और अवधी के संस्कार गीत आज भी लोकप्रिय हैं, वो चाहे विवाह संस्कार के गीत हों, तिलक के, माटी मागर के, मंडप के गीत हों या मातृपूजा, चढाव, बन्ना, भावर , लावा परोसने के गीत हों, सभी संस्कार गीतों ने बघेली और अवधी की लोकप्रियता को बरकरार रखा है। बघेली और अवधी के तमाम संस्कार गीतों मे ग्रामीण जीवन के सभी पक्षों का स्वाभाविक वर्णन हुआ है, यही इसकी सजीवता है जो बघेली और अवधी के गीतों मे भूमंडलीकरण के इस दौर मे भी लोकप्रियता को कायम रखे हुए है। अवधी के संस्कार गीतों मे बघेलखंण्ड के गीतों की महक सहज ही मन को मोह लेती है। बघेलखण्ड और अवध के संस्कार गीतों को तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो उनमे साम्य के साथ अंतर भी दिखाई देता है। पर ये संस्कार गीत आज भी परम्परा को कायम रखते हुए जन–जन मे बसे हुए हैं,कहीं न कहीं किसी न किसी संस्कार मे इनकी गूंज सहज ही कानों मे मधुर रस घोल ही देती है। अतः बघेली और अवध के इन संस्कार गीतों का आकर्षण आज भी बना हुआ है, और इनकी महक भविष्य मे भी बनी रहेगी क्योंकि बघेली और अवधी के संस्कार गीतों मे मन को मोह लेने वाली अपार क्षमता है

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति विशेषांक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग सन 1995 पृ.सं. 25,141*
2. *लखन प्रताप सिंह उरगेस– बघेलखंड के लोकगीत, गणेश प्रकाशन, इलाहाबाद पृ.सं.110,132*
3. *डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल – बघेली भाषा और साहित्य, साहित्य भवन इलाहाबाद पृ.सं. 144*
4. *डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल – बघेली लोक रागिनी भाग 01 भाग 0,2 गणेश प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. सं. 46,50*
5. *डॉ. अमित शुक्ल – बघेलखंड के आंचलिक उपन्यास राष्ट्रवाणी द्वैमासिक दिसंबर 2009 साहित्य भाषा भवन पुणे–महाराष्ट्र से प्रकाशित पृ.सं. 9, 11*
6. *स्वयं का सर्वेक्षण व निष्कर्ष।*